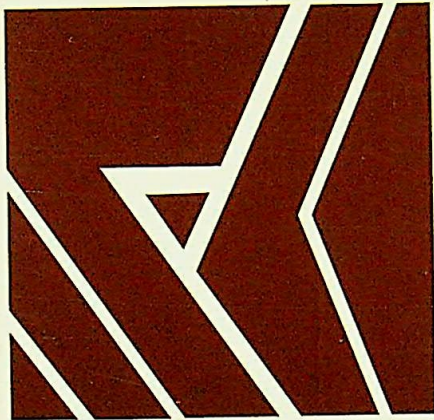


श्री गुरुगीता

(मूलपाठ)





श्री गुरुगीता

(मूलपाठ)

प्रकाशक :

भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट

website : www.bhagavaangopinathji.org

श्री गुरुगीता

पहला संस्करण - जुलाई 1984

दूसरा संस्करण - मई 1992

तीसरा संस्करण - अगस्त 2003

चौथा संस्करण - मई 2007

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशन वर्ष : मई 2007

प्रतियां : 3000

मूल्य : 10/- रु०

प्रकाशक : भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट, उदयवाला, बोडी, जम्मू ।

मिलने का पता:

उदयवाला, बोडी, जम्मू । फोन : 2503783, 2555775

खरयार, हब्बाकदल, श्रीनगर । फोन : 0194-2456113

पम्पोश एनक्लेव, नई दिल्ली । फोन : 011-26216368

निवेदन

भगवानजी ने श्रीमद्भगवद्गीताजी और श्रीगुरुगीता को सर्वोपरि समान स्थान दिया है। गुरुगीता की हस्तलिखित एक प्रति हर समय उनके पास रहा करती थी और प्रायः वह इसका पाठ करके इसके अमृत सागर में गहरी डुबकी लगाकर दिव्यशक्तियों में लीन अपने आसन पर विराजमान रहते थे। गुरुगीता भगवान शंकर और माता पार्वती के बीच हुआ संवाद है। हिमालय पर भ्रमण करते-करते जब एक विशिष्ट स्थान पर देवादिदेव महादेव ने नमन किया तो गौरी ने उनसे इस स्थान के महत्व को जानना चाहा। यह स्थान महादेव के गुरु का साधना स्थान था। इच्छा प्रकट करने पर शंकर ने उमा को गुरु का महात्म्य सुनाया और वह काव्यांश ऋचाएँ स्कन्द पुराण का एक महत्वपूर्ण भाग बन गई हैं।

विभिन्न गुरु-शिष्य परिवारों में जो गुरुगीता वर्तमान में प्रचलित है उन सब में

शंकर-पार्वती का यही संवाद विद्यमान है जिसका स्रोत स्कन्द पुराण है। भगवानजी गुरुगीता के जिन १६५ श्लोकों का पाठ करते थे श्रीगुरुगीता इस संस्करण में वही श्लोक प्रकाशित किए गए हैं। भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट द्वारा श्रीगुरुगीता के अब तक करीब ५ संस्करण छप चुके हैं जिनमें अंग्रेज़ी अनुवाद सहित २ संस्करण, हिन्दी अनुवाद सहित २ संस्करण, और कश्मीरी अनुवाद सहित १ संस्करण सम्मिलित हैं। केवल मूलपाठ का लघु आकार का यह संस्करण इस उद्देश्य से छपवाया गया ताकि श्रद्धालु भक्तजन अपने प्रवास के समय इस ग्रन्थ को साथ रख सकें और उनका नित्य पाठ-पूजा नियम भंग न हो।

ऐसा प्रयास रहा है कि ग्रन्थ त्रुटियों रहित हो, इसमें हम कहाँ तक सफल हो रहे हैं इसका मूल्यांकन पाठक स्वयं करेंगे।

जयकिशोरी पटवारी
प्रधान

Preface

God's grace comes by stages. At the first stage, the spiritual aspirant feels that the Ultimate Truth is God. Who is approachable by devotion. At the second state, God appears before him as the Guru, devotion to Whom then takes the place of the devotion to God. And by the devotion to the guru, the disciple attains the highest form of grace, the experience of the Real Self in It's egoless state. This is the third and last stage.

I had the good luck to be in the close contact with Bhagawaan Gopinath Ji during the last twenty-two years of His life. He was a *Jagadguru* (a world spiritual teacher) and continues to be so, as is borne out by the many spiritual aspirants of several nationalities, who say that He has been appearing to them in His astral form to guide them. Once, a party was singing before Him a song about the great importance of worshipping one's guru and He remarked in Kashmiri, '*Yi gatshi yatshun*', which means 'Only by God's will an

one's own good fortune can one be led to worship one's guru.' or, 'One should have a profound yearning to worship one's guru.' It is said that Bhagawaanji possessed a manuscript copy of the *Guru Geeta*, which He used to recite regularly during the early stages of His spiritual discipline. It is an ancient shastra, which, among other things, mentions the qualities and the greatness of a true guru. In this shastra, it is also mentioned that a regular repetition of it earns the disciple great merit and his guru's abundant grace that lead him to the final beautitude.

In view of it's great spiritual significance, the members of the Bhagawaan Gopinathji Trust and the late Pandit Govind Kaul, a close associate of Bhagawaan Ji, felt a few years ago that the *Guru Geeta* should be published for the benefit of spiritual aspirants. Their efforts to find the manuscript copy used by Bhagawaan Ji Himself did not succeed. Manuscript copies of the *Guru Geeta* are owned by many Kashmiri Pandit families, but they do not let strangers see them, let alone borrow them. The Trust was, however, fortunate in gaining

access, as a result of the efforts of Miss Jai Kishori Patwari, to a century-old manuscript written in the Sharda characters and owned by Swami Aftab Joo Wangnoo, a disciple of Swami Zana Kak Tufchi, Who is believed to have been Bhagawaanji's Guru also. It was transliterated into the Devanaagari script.

Like many other manuscripts, copied umpteen times, this copy of the *Guru Geeta* was found to be replete with orthographical and grammatical mistakes, that creep in owing to the ignorance or carelessness of scribes. The first problem, therefore, was to remove these mistakes. Valuable help was rendered in this respect by the late Pandit Jagannath Chandra, Shri Tribhuvan Nath Shastri and Shri Triloki Nath Bhat Shastri, all of whom deserve our sincere thanks. Thanks are also due to Major Radha Krishen Raina (Retd), who compared the Devanaagari copy with another manuscript copy that we could fortunately lay our hands on.

It was considered desirable to bring out two editions of the *Guru Geeta*, one with an English and the other with a Hindi

rendering. We are thankful to Prof. J. N. Sharma, a scholar of both Sanskrit and English, for the English rendering. Wherever necessary, he has appended notes to the translation, explaining some Sanskrit terms, which do not have exact equivalents in English. He has done a commendable job indeed. We hope this edition will prove useful not only to foreigners but also to those of our own people who are conversant with neither Sanskrit nor Hindi.

Lastly, we thank Shri Prem Nath Handu, Sahitya Shastri, who has prepared the Hindi edition which will be published shortly. The work was assigned to him by our former President, the late Prof. K. N. Dhar, and he has done a good job of it.

S. N. Fotedar

32, Karan Nagar,
Srinagar (Kashmir)
28th June, 1984



जगद्गुरु भगवान गोपीनाथजी

ॐ वन्दे भगवन्तं श्री गोपीनाथं नमः ।

ॐ श्री गणेशाय नमः । ॐ श्री गुरवे नमः ॥

ॐ अस्य श्रीगुरुगीतास्तोत्रमंत्रस्य श्रीसदाशिव ऋषिः,
विराट् छन्दः, श्रीगुरुः परमात्मः देवता हं बीजं, सः
शक्तिः, सोहं कीलकं, श्रीगुरुप्रसादसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः।

अथ न्यासः

ॐ हं सां सूर्यात्मने अंगुष्ठाभ्यां नमः

ॐ हं सीं सोमात्मने तर्जनीभ्यां नमः

ॐ हं सूं निरञ्जनात्मने मध्यमाभ्यां नमः

ॐ हं सैं निराभासात्मने अनामिकाभ्यां नमः

ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्मात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः

ॐ हं सः अव्यक्तात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥

अथ षडंगन्यासः

- ॐ हं सां सूर्यात्मने हृदयाय नमः
ॐ हं सीं सोमात्मने शिरसे स्वाहा
ॐ हं सूं निरञ्जनात्मने शिखायै वौशट्
ॐ हं सैं निराभासात्मने कवचाय हुम्
ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्मात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ हं सः अव्यक्तात्मने अस्त्राय फट् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् । इति दिग्बन्धः ॥

अथ ध्यानम्

हंसाभ्यां परिवृत्तपत्रकमलं दिव्यं जगत्कारणं
विश्वोत्तीर्णमनेकदेहनिलयं स्वशक्तिमात्मेच्छया।
तत्तत्स्यूतविभाविशिष्टममलं भावैकदीपं परं
प्रत्यक्षाक्षरविग्रहं गुरुवरं ध्याये विभुं शाश्वतम् ॥
विश्वे व्यापिनमादिदेवममलं नित्यं परं निष्कलं
नित्योद्बुद्धसहस्रपत्रकमलैः लिप्याक्षरैः मंडितम् ।
नित्यानन्दमयं सुखैकनिलयं सत्यं शिवं स्वप्रभं
ध्यायेदात्मस्वरूपविज्ञमचलं स्वातंत्र्यतः सर्वगम्॥

ॐ श्रीगणेशाय नमः । ॐ श्री गुरवे नमः

अथ श्री गुरुगीता

1. वन्दे गुरुपद-द्वन्द्वं अवाङ्-मनस-गोचरम्॥
रक्त-शुक्ल-प्रभं उग्रं अप्रतर्क्यं परं महत् ॥
2. अचिन्त्याव्यक्त-रूपाय निर्गुणाय महात्मने ।
समस्त-जगद् आधार-मूर्तये ब्रह्मणे नमः ॥

ऋषय ऊचुः

3. गुह्याद् गुह्यतरा विद्या गुरुगीता विशेषतः ।
त्वत् प्रसादात् च श्रोतव्या तत् सर्वं ब्रूहि सुत! नः॥

सूत उवाच

4. कैलास-शिखरे रम्ये भक्ति-साधन-हेतवे ।
प्रणम्य पार्वती भक्त्या शंकर पर्यपृच्छत ॥

श्री पार्वती उवाच

5. ओं नमो देव-देवेश परात् पर जगद् गुरो ।
 सदाशिव महादेव गुरुदीक्षां प्रदेहि मे ॥
6. केन मार्गेण भो स्वामिन् देही ब्रह्म-मयो भवेत् ।
 तत् कृपां कुरु मे स्वामिन् नमामि चरणौ तव ॥

श्री शिव उवाच

7. मम रूपासि देवि त्वं त्वत् प्रीत्यर्थं वदाम्यहम् ।
 लोकोपकारकं प्रश्नं न कोपि कृतवान् पुरा ॥

8. दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तत् शृणुष्व वदाम्यहम्।
गुरूर् ब्रह्मा विना नान्यः सत्यं सत्यं वरानने। ।
9. यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥
10. गुकारास्त्वन्धकारः स्यात् रुकारस् तत् निरोधकः।
अन्धकार-निरोधित्वात् गुरूर् इत्यभिधीयते ॥
11. गकारेण ह्युकारस्य योगस्तिमिर-वाचकः ।
अन्धकार-विनाशित्वात् गुरूर् इत्यभिधीयते॥

12. वेद-शास्त्र-पुराणानि धर्म-शास्त्रादिकानि च ।
मन्त्र-यन्त्राणि मीमांसा स्मृतीर् उच्चाटनादिकम् ॥
13. न्याय-विस्तार-कल्पादि चेतिहासादिकं तथा।
गुरोः कृपां विना कश्चित् न प्राप्नोति कदाचन ॥
14. यद् अङ्घ्रि-कमल-द्वन्द्वं द्वन्द्व-ताप-निवारकम् ।
तारकं भव-सिन्धोश्च श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम् ॥
15. वेद-शास्त्र-पुराणानि जानाति कृपया गुरोः ।
अतो लोके गुरुः साक्षात् वर्तते वेद-तत्त्व-वित् ॥

16. शैव-शाक्तागमादीनि तथान्ये बहवो मताः ।
अपभ्रंशः समस्तानां जीवानां भ्रान्त-चेतसाम् ॥
17. यज्ञो व्रतं तपो दानं जपस् तीर्थं तथैव च ।
गुरोस् तत्त्वं अविज्ञाय समग्रं निष्फलं भवेत् ॥
18. गुरोः ज्ञानात्मनो नान्यत् तत्त्वं सत्यं न संशयः ।
तत् लाभार्थं प्रयत्नस्तु कर्तव्यः सुमनीषिभिः ॥
19. देवि ! ब्रह्म भवेत् देही त्वत् कृपार्थं वदाम्यहम् ।
सर्व-पाप-विशुद्धात्मा श्रीगुरोः पाद-सेवनात् ॥

20. काले तीर्थावगाहस्य संप्राप्नोति फलं नरः ।
गुरोः पादोदकं पीत्वा शेषं शिरसि धारयेत् ॥
21. शोषणं पाप-पङ्क्तस्य दीपनं ज्ञान-चेतसाम् ।
गुरोः पादोदकं पेयं संसारार्णव-तारणम् ॥
22. अज्ञान-मूल-हरणं जन्म-कर्म-निवारणम् ।
ज्ञान-वैराग्य-सिद्ध्यर्थं गुरोः पादोदकं पिवेत् ॥
23. गुरोः पादोदकं-पानं गुरोर् उच्छिष्ट-भोजनम् ।
गुरोर् मूर्तेः सदा ध्यानं गुरोस्तोत्रं सदा जपेत् ॥

24. काशीक्षेत्रे निवासश्च जाह्नवी चरणोदकम्।
गुरोर् विश्वेश्वरः साक्षात् तारकः ब्रह्म-वाचकः॥
25. गुरोः क्षेत्रे निवासश्च गुरोः पादाङ्किता धरा।
तीर्थराजः प्रयागोसौ गुरु-मूर्त्यै नमो नमः ॥
26. गुरोर् मूर्तिं स्मरेत् नित्यं गुरोर् नाम सदा जपेत्।
गुरोर् आज्ञां प्रकुर्वीत गुरोर् मन्त्रं विभावयेत् ॥
27. गुरोर् वक्त्रे स्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत् प्रसादतः ।
गुरोर् मूर्तेः सदा ध्यानं नारी पतिव्रता यथा॥

28. स्वाश्रमं च स्वजातिं च स्वकीर्तिं पुष्टि-वर्धनम्।
अन्यत् सर्वं परित्यज्य गुरु-रत्नं विभावयेत् ॥
29. गुरुं चिन्तयतां पुँसां सुलभं परमं सुखम्।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन गुरोर् आराधनं कुरु ॥
30. गुरोर् वक्त्रे स्थिता विद्या गुरु-भक्त्या च लभ्यते।
त्रैलोक्ये स्फुट-वक्तारो देवाद्याः सुर-पन्नगाः॥
31. गुकारस्त्वन्धकारोस्ति रुकारस्तद् विनाशकः
अज्ञान-ग्रासकं ब्रह्म गुरूर् एव न संशयः॥

32. गुकारः प्रथमो वर्णो मायादि-गुण-भासकः ।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म माया-भ्रान्ति-विमोचकः ॥
33. एवं गुरु-पदं श्रेष्ठं देवानां अपि दुर्लभम् ।
हाहा-हूहू-गणैश्चैव गन्धर्वाद्यैश्च पूज्यते ॥
34. ध्रुवं तेषां च सर्वेषां नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ।
आसनं शयनं वस्त्रं वाहनं भूषणादिकम् ॥
35. साधकेन प्रदातव्यं गुरोः सन्तोष-कारणम् ।
गुरोर् आराधनं कार्यं यत् प्रियं तत् निवेदयेत् ॥

36. आत्म दारादिकं चैव सद्-गुरुभ्यो निवेदयेत् ।
कृमि-कीट-भस्म-विष्टा-दुर्गन्ध-मल-मूत्रकम् ॥
37. श्लेष्मा-रक्त-वसा-चर्म तत् क्षेत्रं च वरानने ।
देहाभिमानिनो मूढाः पतन्ति नकार्णवे ॥
38. शरीरं अर्थं सर्वस्वं सद् गुरुभ्यो निवेदयेत् ॥
येनोद्धृतं इदं सर्वं तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
39. गुरूर् ब्रह्मा गुरूर् विष्णुः गुरुः देवो महेश्वरः ।
गुरूर् एव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

40. गुरु माता पिता चैव गुरुर् देवो हि बान्धवः ।
गुरोर् देवात् परं नान्यत् तस्मै श्री गुरवे नमः॥

41. हेतवे जगतां एव संसारार्णव-तारणे ।
प्रभवे सर्व-विद्यानां शम्भवे गुरवे नमः ॥

42. अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाजजन-शलाकया ।
चक्षुर् उन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

43. अखण्ड-मण्डलाकार व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत् पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

44. स पिता स च मे माता स बन्धुः स च देवता ।
संसार-प्रतिबोधार्थं तस्मै श्री गुरवे नमः॥
45. यत् सत्येन जगत् सत्यं यत् प्रकाशेन भाति तत् ।
यद् आनन्देन वोदेति तस्मै श्री गुरवे नमः॥
46. यस्मिन् स्थितं इदं सर्वं यद् भानाद् भाति चैव यत् ।
यत् प्रियात् प्रिय पुत्रादि तस्मै श्री गुरवे नमः॥
47. यैन चिन्तयते देही चित्तं चेतयते यतः ।
जाग्रत् स्वप्न-सषुप्त्यादि तस्मै श्री गुरवे नमः॥

48. यस्य ज्ञानं इदं विश्वं न दश्यं भिन्न-भावतः।
सदैक-रूप-रूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः॥
49. यस्य मन्त्रं तस्य मन्त्रं मन्त्रं यस्य महात्मनः।
अनन्य-भाव-भावाय तस्मै श्री गुरवे नमः॥
50. यस्य कारण-रूपस्य कार्य-रूपेण भाति यः
कार्य-कारणतां एति तस्मै श्री गुरवे नमः॥
51. नानां-रूपं इदं विश्वं न केनाप्यस्ति भिन्नता
कार्य-कारणतां एति तस्मै श्री गुरवे नमः॥

52. शिवः क्रुद्धो गुरुस् त्राता गुरुः-क्रुद्धो शिवो न हि।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन श्री गुरुं शरणं व्रजेत् ॥
53. वन्दे गुरु-पद-द्वन्द्वं वाङ्-मनोतीत-गोचरम् ।
श्वेत-रक्त-प्रभा-युक्तं शिव-योगात्मकं परम्॥
54. गुकारं तु गुणातीतं रुकारं रूप-वर्जितम् ।
गुणातीत-स्वरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः॥
55. अत्रि-नेत्रोद्भव-शीतः चतुर्बाहुस्-त्रिलोचनः ।
यः चतुर् वदनो ब्रह्मा श्री गुरुः कथितः प्रिये॥

- 56: अयं मयाजजलिः बद्धो दया-सागर ! वृद्धये।
भवत्-चानुग्रहो भूयात् घोर-संसार-मुक्तये ॥
57. श्री गुरुः परमं रूपं विवेक-चक्षुषोऽग्रतः ।
मन्द-भाग्याः न पश्यन्ति ह्यन्धाः सूर्योदयं यथा ॥
58. श्रीनाथ-चरण-द्वन्द्वं यस्यां दिशि विराजते ।
तस्यां दिशि नमस् कुर्याद् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये ॥
59. तस्यां दिशि सतत प्राञ्जलिः मन्त्र-पुष्पान् ।
संप्रक्षिपेत् सुख-करान् च द्विरेफ-युक्तान् ॥
जागर्ति यत्र भगवान् गुरु-चक्रवर्ती ।
विश्वोदय-प्रलय-नाटक-नित्य-साक्षी ॥

60. सात्विकादि गुणैः प्रशस्त-विभवै व्याधि-हरैः दुष्करै
प्राणायाम-शतैर् महेश्वर-पदन प्राप्यते मानवैः ।
यत्-कारुण्य-लवेन प्राण-महतो यत्तः स्वयं तत् क्षणात्
सेव्यः स परमार्थ-चिन्तन-परो वेदार्थ-वित् श्रीगुरुः ॥
61. गुरुर् देवो जगत् सर्वं ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मकः ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात् संपूजयेद् गुरुम् ॥
62. सर्व-श्रुति-शिरो-रत्न-विराजित-पदाम्बुजः ।
वेदान्ताम्बुज-सूर्याय तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
63. यस्मात् परतरं नान्यत् अस्ति किञ्चिद् जगत् त्रये ।
मनसा वचसा ध्येयः तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

64. गुरु-देव-प्रसादेन ब्रह्मा-विष्णु-हरादिषु ।
सामर्थ्यं प्राप्यते शिष्यैर् मोक्षस् तत् सेवया ध्रुवम् ॥
65. ज्ञानी कर्मी तथा योगी गुरुर् ज्ञेयः सुख-प्रदः ।
त्रिभिः हीनं त्यजेत् दूरे मिथ्या-ज्ञान-प्रदर्शकम् ॥
66. यस्य स्मरण-मात्रेण ज्ञानं उत्पद्यते स्वयम् ।
ज्ञान-शेवधि-दात्रे वै तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
67. देव-किन्नर-गन्धर्वाः पितृ-यक्षाश्च चारणाः ।
मुनयोपि न जानन्ति गुरु-शुश्रूषणा-विधिम् ॥

68. ऋशयो नाग-सिद्धाश्च गुरु-सेवा-पराङ्मुखाः ।
महाहंकार-संयुक्तास् तपो-विद्या-बलान्विताः॥

69. संसार-कुहरावर्ते घटीयन्त्रे यथा घटाः ।
उपर्यधः भ्रमन्ते ते मुच्यन्ते न भवार्णवात् ॥

70. ध्यानं शृणु महादेवी सर्वानन्द-प्रदायकम् ।
सर्व-सौख्य-करं चैव भुक्ति-मुक्ति-प्रदायकम्॥

71. स्वदैशिकस्यैव शरीर-चिन्तनं ।
भवेत् अनन्तस्य शिवस्य चिन्तनम्॥
स्वदैशिकस्यैव च नाम-कीर्तनम् ।
भवेत् अनन्तस्य शिवस्य कीर्तनम् ॥

72. श्रीमत् परंब्रह्म गुरुं वदामि
श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं भजामि ।
श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं स्मरामि
श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं नमामि ॥

73. ब्रह्मानन्दं परम-सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम् ।
द्वन्द्वातीतं गगन-सदृशं तत् त्वं अस्यादि लक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलं अचलं सर्वदा साक्षि-भूतम् ।
भवातीतं त्रिगुण-रहितं सद् गुरुं तं नमामि ॥

74. आनन्दं आनन्द-करं प्रसन्नं

ज्ञान-स्वस्वपं निज-बोध-युक्तम् ।

योगीन्द्रं ईड्यं भव-रोग-वैद्यं

श्रीसद् गुरुं नित्यं अहं नमामि॥

75. हृद्-अम्बुजे कर्णिका-मध्य-संस्थे

सिंहासने-संस्थित-दिव्य-मूर्तिम्।

ध्यायेद् गुरुं चन्द्र-कलावतंसं

सत्-चित्-सुखाभीष्ट-वरं वदानम्॥

76. श्वेताम्बरं श्वेत-विलेप-पुष्पं
मुक्ता-विभूषं मुदितं द्विनेत्रम्।
वामाङ्ग-पीठे-स्थित-दिव्य-शक्तिं
मन्द-स्मितं शान्ति-कृपा-निधानम्॥
77. यस्मिन् सृष्टि-स्थिति-ध्वंस-पिधानानुग्रहात्मकम् ।
कृत्यं पंच-विधं शश्वद् भासते तं नमाम्यहम्॥
78. यत् पाद-रेणुभिर् नित्यं भक्ताः संसार-वारिधे ।
सेतुं बध्नन्ति वै सम्यक् दैशिकं तं उपास्महे ॥

79. प्रातः शिरसि शुक्लेब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ।
वराभय-करं शान्तं स्मरेत् तं नाम-पूर्वकम् ॥
80. नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरञ्जन्म् ।
नित्य-बोधं चिद् आनन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम् ॥
81. यद् आदिस्थं च संसार-वृक्ष-बीजं अनश्वरम् ।
ब्रह्मरन्ध्र-सिताम्बोज-मध्यस्थं चन्द्र-मंडलम् ॥
82. आकाशे दिव्य-रेखांतः सहस्रदल-मंडिते ।
हंस-रूपे त्रिकोणे च स्मरेत् तं मध्यतो गुरुम् ॥

83. सकल-भुवन-दृष्टिः कल्पिताशेष-दृष्टिः
अक्षगण-परमेष्टिः तत्परार्थैकः-दृष्टिः ।
निखिल-शमन-दृष्टिः सम्पादर्थैक-दृष्टिः
भवगण-परमेष्टिः मेरु-सारैक-दृष्टिः ॥

84. न गुरोर् अधिकं न गुरोर् अधिकः
न गुरोर् अधिकं न गुरोर् अधिकः ।
मम शासनतो मम शासनतः
मम शासनतो मम शासनतः ॥

85. इदं एव शिवं अयं एव शिवः

इदं एव शिवं अयं एव शिवः ।

शिव-शासनतः शिव-शासनतः

शिव-शासनतः शिव-शासनतः ॥

86. एवं विधं गुरुं ज्ञात्वा ज्ञानं उत्पद्यते स्वयम् ।

तदा गुरूपदेशेन मुक्तोऽहं इति भावयेत् ॥

87. गुरुणा दर्शितैर् मार्गैः मनः शुद्धं तु कारयेत् ।

अनित्यं खण्डयेत् सर्वं यत् किञ्चित् ध्यान-गोचरम् ॥

88. ज्ञेयं सर्वं अनित्यं च ज्ञानं चामन उच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं समं कुर्यात् सद् गुरोर् उपदेशतः॥
89. चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरंजनम् ।
नाद-बिन्दु-कलातीतं तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥
90. स्थावरं निर्मलं शान्तं जंगमं स्थिरं एव च ।
व्याप्तं येन जगत् सर्वं तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
91. ज्ञान-शक्ति-समाखण्ड तत्त्व-माला-विभूषितम् ।
भुक्ति-मुक्ति-प्रदातारं तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥

92. अनेक-जन्म-संप्राप्त-कर्म-बन्ध-विदाहिने ।
ज्ञानानल-प्रभावेन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
93. न गुरोर् अधिकं तत्त्वं न गुरोर् अधिकं तपः ।
तत्त्व-ज्ञानात् परं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
94. मन् नाथः श्रीजगन् नाथो मद्गुरुः श्री जगद्गुरुः।
स्वात्मैव सर्व-भूतात्मा तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
95. गुरूर् आदिर् अनादिश्च गुरुः परम-दैवतम् ।
गुरोः-परतरं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

96. ध्यान-मूलं गुरोः मूर्तिः पूजा-मूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्र-मूलं गुरोः वाक्यं मोक्ष-मूलं गुरोः कृपा ॥
97. सप्त-सागर-पर्यन्तं तीर्थ-स्नान-फलं परम् ।
गुरोर् अङ्घ्रि-जल-बिन्दोः सहस्रांश-समं मतम् ॥
98. गुरुर् एव जगत् सर्वं ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात् संपूजयेद् गुरुम् ॥
99. ज्ञानं विना मुक्ति-पदं लभ्यते गुरु-भक्तितः ।
गुरु-तुल्यः यतो ज्ञान्यः साधयेद् गुरुं मार्गतः ॥

100. एवं ज्ञात्वा महादेवि गुरोः निन्दां करोति यः ।
स याति नरकान् घोरान् यावत् चन्द्र-दिवाकरौ ॥
101. गुशब्दस्तु गुणातीतो रूपातीतो रुकारकः ।
गुण-रूप-विहीनत्वाद् गुरूर् इत्यभिधीयते ॥
102. करुणा-खड्ग पातेन छेत्ता स्व-शिष्य-पाशकान् ।
सम्यग् आनन्द-जनकः सद् गुरुः सोभिधीयते ॥
103. यावज् जीवेद् अयं जीवो गुरुं तावत् सदा स्मरेत् ।
गुरु-लोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत् ॥

104. हुंकारेण न वक्तव्यं असत्यं वा कदाचन ।
न स्थातव्यं गुरोर् अग्रे धृष्ट-रूपेण वा क्वचित् ॥
105. गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य जयेच्छो यो विवादकः ।
अरण्ये निर्जले देशे स भवेद् ब्रह्म-राक्षसः ॥
106. मुनिभिः पन्नगैर् वापि सुरैर् वा शपितो यदि ।
काल-मृत्यु-भयाद् वापि गुरुः रक्षति पार्वति ॥
107. अशक्ताः हि सुराद्याश्च ह्यशक्ताः मुनयस् तथा ।
गुरु-शापेन ते क्षीणाः क्षयं यान्ति न संशयः ॥

108. श्रुति-स्मृति-तत्त्व-ज्ञानं प्राप्नोति गुरु-सेवया।
ते वै सन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेश-धारिणः ॥

109. यत्रैव तिष्ठति सोऽपि स दशः पुण्य-भाजनम्
मुक्तस्य लक्षणं देवि तवाग्रे कथितं मया ॥

110. मन्त्रराजं इदं देवि गुरुर् इत्यऽक्षर-द्वयम् ।
स्मृति-वेदार्थ-वाक्यानां गुरुः साक्षात् परं पदम् ॥

111. नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत् परम् ।
पूर्णं ब्रह्म निराभासं दीपो दीपान्तराद् यथा ॥

112. गुरोः कृपा प्रसादेन ह्यात्मारामं निरीक्षयेत् ।
अनेन मुक्ति-मार्गेण स्वात्म-ज्ञानं प्रवर्तते ॥
113. आब्रह्मस्तम्भ-पर्यन्तं परमात्म-स्वरूपकम् ।
स्थावरं जंगमं सर्वं प्रणमामि जगद् गुरुम् ॥
114. वन्देहं सत् चिद् आनन्दं भेदातीतं गुरोः पद्म ।
नित्यं पूर्णं निराभासं निर्गुणं स्वात्म-संस्थितम् ॥
115. परात् परतरं ध्येयं नित्यं आनन्द-कारकम् ।
हृदयाकाश-मध्यस्थं शुद्ध-स्फटिक-सन्निभम् ॥

116. स्फाटिके प्रतिमा-रूपं दृश्यते दर्पणे यथा ।
तथात्मानं चिद् आकाशे संस्मरेत् सोहं इत्युत ॥

117. अंगुष्ठ-मात्रं पुरुषं ध्यायेत च चिन्मयं हृदि ।
तत्र स्फुरति भावो यः शृणु तं कथ्याम्यहम् ॥

118. अजोहं अजरं नित्यं अनादिं नित्यतां गतम् ।
अविकारं चिदानन्दं प्रणयात् तं स्मराम्यहम् ॥

119. अपूर्वानन्द-दं नित्यं स्वयं-ज्योतिर् निरामयम् ।
विरजस्कं परं शम्भुं आनन्दं पर अव्ययम् ॥

120. अगोचरं तथागम्यं नाम-रूपादि-वर्जितम् ।
निःशब्दं तं विजानीयात् स्वभावं ब्रह्म पार्वति ॥
121. यथा निज-स्वभावेन कर्पूर-कुसुमादिषु ।
शीतोष्णादि स्वभावश्च तथा ब्रह्म च शाश्वतम् ॥
122. स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्रकुत्रचित् ।
कीटो भृङ्ग इव ध्यानाद् यथा भवति तादृशः ॥
123. किं अत्र बहुनोक्तेन शास्त्र-कोटि-शतेन च ।
दुर्लभा चित्त-विश्रान्तिः सद् गुरोः करुणां विना ॥

124. निमेषार्धार्ध-पातेन यद् वाक्याद् वै विलोक्यते ।
स्वात्मा च स्थैर्यं आदत्ते तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
125. गुरु-ध्याने सदा सक्तो देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
पिण्डे पदे तथा रूपे मुक्तोसौ नात्र संशयः ॥
126. स्वयं सर्वमयो भूत्वा तत् पदं चावलोकयेत् ।
परात् परतरं नान्यत् सर्वं एव निरामयम् ॥
127. तस्यावलोकनाद् एव सर्व-सङ्ग-विवर्जितः ।
एकाकी निस्पृहः शान्तः तिष्ठेत् तस्य प्रसादतः ॥

128. लब्धं वापि अथवा अलब्धं अल्पं वा बहुलं तथा ।
निष्कामैर् एव भोक्तव्यं सदा सन्तुष्ट-मानसैः ॥
129. सर्वज्ञ-पदं इत्याहुः देही सर्वमयो हि सः ।
सदा शान्तः सदानन्दो रमते यत्रकुत्रचित् ॥
130. स्वकुलाकुल-कोटींश्च तारेयत् सोपि तत् क्षणात् ।
अतस्तं सद् गुरुं ज्ञात्वा त्रिकालं अभिवन्दयेत् ॥
131. साष्टांग-प्राणिपातेन स्तुवन् नित्यं गुरुं भजेत् ।
भजनात् स्थैर्यं आप्नोति स्व-स्वरूपमयो भवेत् ॥

132. शिवे रुष्टे गुरुस् त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।
लब्ध्वा कुल-गुरुं सम्यग् गुरोः सेवा समाचरेत्॥
133. मधु-लुब्धो यथा भृंगः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
ज्ञान-लुब्धस् तथा शिष्यो गुरोः गुर्वन्तरं व्रजेत्॥
134. ज्ञान-हीनो गुरुस् त्याज्यो मिथ्या-वादी हि दाम्भिकः ।
स्व-विश्रान्तिं न जानाति परान् विश्रान्तयेत् कथम् ?
135. शिलायां किं परं पारं ? शिला-संगं परित्यजेत् ।
स्वयं तीर्णो भवेत् नासौ परं निस्तारयेत् कथम् ?

136. न वन्दनीयाः कष्टेऽपि दर्शने भ्रान्ति-कारकाः ।
गुरवः वर्जनीयाः स्युः सुशिष्यैः सन्मताश्चर्यैः ॥
137. शिष्यस्तु नात्र हे देवि प्रपंस्यो येन-केन-चित् ।
सोऽपि ज्ञानं अवाप्नोति भक्त्या परमया गुरोः ॥
138. गूढाः दृढाश्च भक्ताश्च मौन-व्रत-परायणाः ।
सदा-संत्यक्त-कामाश्च पञ्चधा गुरवो मताः ॥
139. श्रीगुरोः पादुकां मुद्रां मुख-मन्त्रं च गोपयेत् ।
गुरोः कृपार्जितं सम्यग् वस्तु अभीष्ट-करं सदा ॥

140. गुरु-त्यागद् भवेत् मृत्युः मन्त्र-त्यागाद् दरिद्रता ।
गुरु-मन्त्र-परित्यागी रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
141. पाखण्डिनः पापरताः नास्तिकाः भेदबुद्धयः ।
स्त्रीलम्पटाः दुराचाराः कृतघ्नाः बक-वृत्तयः ॥
142. कर्म-भ्रष्टाः क्षमा-हीनाः निन्दकास् तर्क-वादिनः ।
कामिनः क्रोधिनश्चैव हिंसकाश्च शठास्तथा ॥
143. त एते गुरुभिस् त्याज्याः सर्व-धर्म-बहिष्कृताः ।
ज्ञानं शिष्याय दातव्यं सदा पाप-विरोधिने ॥

144. सत् शिष्यैः गुरवः सेव्या ऐक्य-भक्त्या विचार्य च ।
न यावद् गुरु-कारुण्यं लभेन्न मोक्ष कारणम् ॥
145. गकारस्तु शिवः प्रोक्त उकारो ब्रह्म चोच्यते ।
रुकारस्तु रविः प्रोक्तो गुरुः सर्वार्थ-कोविदः ॥
146. महतां चैव भूतानां प्रलये सम् उपस्थिते ।
स्वतन्त्रस्तु शिवो भूत्वा सम्पूर्णो भवति महान् ॥
147. उपदशो ह्ययं देवि गुरु-मार्गेण मुक्तिदः ।
गुरु-भक्तिसु तथा ध्यानं सकलं तव कीर्तितम् ॥

148. ध्यात्वा प्रत्यक्षं एवैतद् भजामि च वदामि च ।
लोकोपकारकं देवि गुरुं अभ्यर्चयेत् सदा ॥

149. नतास्म ते नाथ! पदारबिन्दं
बुद्धीन्द्रिय-प्राण-मनो-वचोभिः ।
यैः चिन्त्यते तद् हृदिभाव-युक्तैर्?
मुमुक्षुभिः कर्म-फल-विपाकात् ॥

150. ज्ञान-प्रकाशं विभवेश्ट-दोहं
स्मराम्यहं देव-पदाब्ज-द्वन्द्वम् ।
अत्यन्त-विज्ञान-मयं विशुद्धं
गुरुं चिदानन्द-घनं भजामि ॥

श्री पार्वती उवाच

151. पिंडं तु किं महादेव पदं किं समुदाहृतम् ?
रूपातीतं तु यद् रूपं तत् त्वं आख्याहि शंकर ॥

श्री शिव उवाच

152. पिंडं कुंडलिनी शक्तिः पदं हंस उदाहृतः ।
रूपं बिन्दुर् इति ज्ञेयं रूपातीतो निरञ्जनः ॥

153. लौकिकस्तु गुरूर् भाति भक्त्यर्थे हि परस्तु यः ।
ज्ञानेन भावयेत् सर्वं कर्म निष्काम-कार्यतः ॥

154. यद्यप्यऽधीताः निगमाः शङ्गाः सागमाः प्रिये ।
अध्यात्मादीनि शास्त्रानि ज्ञानं नास्ति गुरुं विना ॥

155. निरस्य सर्वसन्देहं एकीकृत्य च दर्शनम् ।
तपस्यन्तं रहस्यस्थं भजामि गुरुं ईश्वरम् ॥

156. लौकिकात् कर्मणो याति न हि तत् परमं पदम् ।
ज्ञानं च भावयेत् सर्वं कर्म निष्काम्-काम्यतः ॥

157. गुरुगीतां इमां देवि गुरोस् तत्त्वार्थ-बोधिकाम् ।
भव-व्याधि-विनाशाय स्वयं एव जपेत् सदा ॥

158. श्रीगीता भक्ति-भावेन पठ्यते श्रूयतेथवा ।
लिखित्वा च प्रदानेन कामना सफला भवेत् ॥
159. गुरोः गीताक्षरैः बद्धं मन्त्र-राजं इमं जपेत् ।
अन्ये च विविधाः मन्त्राः कलां नार्हन्ति शोडशीम् ॥
- 160 सर्व-पाप-समूहघ्न सर्व-दारिद्र्य-वारकम् ।
काले मृत्यु-भय-हरं सर्व-संकट नाशकम् ॥
161. यक्ष-राक्षस भूतघ्नं चौर-व्याघ्र-भयापहम् ।
महा-व्याधि-हरं चैव सर्वोपद्रव-नाशकम् ॥

162. सर्व-दुर्भिक्ष-शमनं महारोग-निवारकम्
यत्फलं गुरु-सान्निध्यात्तत्फलं पठनाद् भवेत् ॥

163. अनन्तफलं आप्नोति गुरुगीता-जपेन हि ।
श्रेयसे पठतो जन्तोर् विभूतिः सर्वदा भवेत् ॥

164. कुशाजिनास्तृतासने निश्चले निर्मले शुभे ।
उपविश्य समं काये जपेद् एकाग्र-मानसः ॥

165. ध्येयं शुक्ले च शान्त्यर्थं वशे रक्तासनं प्रिये ।
अभिचारे कृष्णवर्णं पीतवर्णं धनागमे ॥

166. शान्त्यायुत्तरतः जाप्यं वशे पूर्व-मुखोदितम् ।
दक्षिणे मारणं प्रोक्तं स्तम्भनं पश्चिमे मुखे ॥
167. मुक्तिदं सर्व-भूतानां बन्ध-मोक्ष-करं परम् ।
सर्व-सौख्यकरं नृणां गुरुभ्यो भक्ति-वर्धनम् ॥
168. दुष्कर्म-नाशकं चैव सुकर्म-सिद्धिदं तथा ।
असिद्धं साधयेत् सर्वं नव-ग्रह-भयापहम् ॥
169. दुःस्वप्न-नाशकं चैव सुस्वप्न-फल-दायकम् ।
सर्व-शान्ति-करं नित्यं वन्ध्यादिष्वपि पुत्रदम् ॥

170. अवैधव्य-करं स्त्रीणां सौभाग्य-जननं सदा ।
आयुर् आरोग्यं ऐश्वर्यं-पुत्र-पौत्र-विवर्धनम् ॥
171. रोगं दुःखं भयं विघ्नं विनाश्य सुख-कारकम् ।
सर्व-बाधा-प्रशमनं धर्मार्थ-काम-मोक्षदम् ॥
172. यद् यत् कामयते कर्मी तत् तद् आप्नोति निश्चितम् ।
कामदं कामधेनुश्च कल्पितं कल्पवृक्षकम् ॥
173. चिन्तामणिं चिन्तितस्य सर्व-मंगल-दायकम् ।
लिखित्वा दापयेद् देवि श्रेयः परं अवाप्नुयात् ॥

174. कामेन जपते यो वै तस्य काम-फल-प्रदम् ।
यं यं चिन्तयैते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चतम् ॥

175. जपन्ते शाक्त-सौराश्च शैव-गाणेश-वैष्णवाः॥
सर्वेभ्यो सिद्धिदं देवि सत्यं सत्यं न संषयः॥

176. अथ काम्य-जप-स्थानं कथयामि वरानने।
सागरान्ते नदी-तीरे तीर्थे हरि-हरालये ॥

177. शक्तिदेवालये गोष्ठे सर्वदेवालये शुभे ।
वटस्य धात्र्याः मूले वा तथा वृन्दावनेपि वा ॥

178. पवित्रे निर्मले स्थान नित्यानुष्ठानकेपि वा ।
समाहितेन मौनेन जपं एतत् समारभेत् ॥
179. जपेन फलं आप्नोति ह्यश्वमेध-शतस्य च ।
सिद्ध्यन्ति सर्व-कार्याणि जन्म-साफल्य-हेतवे ॥
180. संसार-मल-नाशाय भव-पाश निवृत्तये ।
गुरुगीताम्भसि स्नानं कर्तव्यं साधकैः सदा ॥
181. स्थानानि तानि सर्वाणि पवित्राणि न संशयः ।
गुरवः यत्र तिष्ठन्ति सद्-असद्-ब्रह्मवित्तमाः ॥

182. स्मर्तव्यः सर्वदा भक्त्या गुरुः शिष्येण धीमता ।
यस्य स्मरणमात्रेण पुनर् जन्म न विद्यते ॥

183. स एव सर्वसंपत्ति तस्मात्संपूजयेद् गुरुं ।
गुरोस् तीर्थे वसेत् नित्यं सर्वत्र सुख-भाग् भवेत् ॥

184. समुद्रस्य यथा तोयं क्षीरे क्षीरं जले जलम् ।
कुम्भे कुम्भे यथाकाशः यथात्मा परमात्मनि ॥

185. यथा ज्ञानेन जीवात्मा परमात्मनि वै तथा ।
ऐक्येन रमते ज्ञानी गुरुगीता-जपेन हि ॥

186. गुरुगीता-समं नान्यत् नान्यत् तत्त्वं गुरोः परम् ।
गुरोः परतरं नान्यत् सत्यं उक्तं वरानने ॥

187. अनेक-जन्म-विहिताः यज्ञ-दान-तप-क्रियाः ।
सर्वाः सफलतां यान्ति गुरोः सन्तोष-मात्रतः ॥

188. इदं रहस्यं परमं तवाग्रे कथितं मया ।
देयं सुगोप्यं शिष्याय गुरु-सेवारताय वै ॥

189. अतीव-बुद्धि-प्राचुर्य-गुरु-भक्तिमते सते ।
मन्त्र-राजं इदं गुह्यं दातव्यं केवलं प्रिये ॥

190. गुरु-मन्त्रं मुखे यस्य तस्य सिद्धिर् भवेद् ध्रुवम् ।
दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्ध्यन्ति गुरुपुत्रके ॥

191. गुरु-भावः परं तीर्थं अन्यतीर्थं निरर्थकम् ।
तेनैव मुच्यते शिष्यो घोर-संसार-बन्धनात् ॥

192. विद्या धनं बलं दानं भाग्यं तेषां निरर्थकम् ।
सर्वदा ये न कुर्वन्ति गुरु-सेवां वरानने ॥

193. गुरवो बहवः सन्ति शिष्य-वित्तापहारकाः ।
स गुरुः दुर्लभो देवि शिष्य-सन्ताप-हारकः ॥

194. यस्य प्रसादात् अहं एव सर्वं
मयैव सर्वं परिकल्पितं च ।

इत्थं विजानामि सदात्मरूपं - तस्यांघ्रि-पद्मं
प्रणतोस्मि नित्यम् ॥

195. संसार-सागर-समुद्धरणैक-मन्त्रं
ब्रह्मादि-देव-मुनि-पूजित-सिद्धमन्त्रम् ।
दारिद्र्य-दुःख-भय-शोक-विनाश-मन्त्र
वन्दे महाभय-हरं गुरुराज मन्त्रम् ॥

॥ इत्युक्तं चैव ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः अष्टाध्याय्योऽष्टमोऽध्यायः ॥

॥ समाप्तं ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः अष्टाध्याय्योऽष्टमोऽध्यायः ॥

॥ समाप्तं ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः अष्टाध्याय्योऽष्टमोऽध्यायः ॥

॥ समाप्तं ॥





प्रकाशक :
भगवान गोपीनाथजी ट्रस्ट